विचार संगम

भारतीय दर्शन, विज्ञान, साहित्य-कला और तकनीकी के विशेष संदर्भ में

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

विचार संगम

भारतीय दर्शन, विज्ञान, साहित्य-कला और तकनीकी के विशेष संदर्भ में

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

Ph.D., D.Lit. (Sub.)

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,
अजमेर

Books n Books

51/1509, आचमन, वेदविहार,
लोहाखान, अजमेर-305001

प्रकाशक :

पुष्पा शर्मा

Books n Books

51/1509, आचमन, वेदविहार,

लोहाखान, अजमेर-305001

ई-मेल : bnbajmer@gmail.com

संस्करण

प्रथम 2025

ISBN : 978-81-993854-0-5

मूल्य - 400/-

रचना - विचार संगम-भारतीय दर्शन, विज्ञान, साहित्य-कला और तकनीकी के विशेष संदर्भ में

सम्पादक - डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

मुद्रक - श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

29

संगीत का स्वरूप

उमेश कुमार
सह आचार्य (शिक्षा विभाग)
हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

भारतीय संगीत परंपरा में संकीर्तन का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह केवल गान नहीं, बल्कि भक्ति, भावना और सामूहिक साधना का संगम है। 'कीर्तन' शब्द का अर्थ होता है — प्रभु के नाम, लीला और गुणों का गान, घोषणा या पुनः उच्चारण। सामूहिक रूप से किया गया यह गान 'संकीर्तन' कहलाता है, जिसमें संगीत, लय और आत्मिक भाव का सुंदर समन्वय होता है।

डॉ. रमा वल्लभ मिश्र के अनुसार, कीर्तन की परंपरा लगभग 1200 वर्ष पुरानी है। हवेली संगीत में इसका प्रमुख स्थान रहा, जहाँ भक्ति को संगीत के माध्यम से व्यक्त किया गया। शास्त्रों के अनुसार — 'नामलीलागुणादीनामुच्चैः भाष्यतु कीर्तनम्', अर्थात कीर्तन तीन प्रकार का है- नाम-कीर्तन, लीला-कीर्तन और गुण-कीर्तन।

भक्ति की नवधा भक्ति और चौंसठ साधन-अंगों में संकीर्तन को अत्यंत प्रमुख माना गया है। श्री गोकुलनाथजी के 24 वचनामृत में कहा गया है —

महतां कृपाया यावद् भगवान दययिष्यति
तावदानेद संदोहः कीर्त्यमानः सुखाय हि
महता कृपया यद्वत्कीर्तन सुखदं सदा
न तथा लौकिकानांतुस्निग्धभोजन रूक्षवत्।

अर्थात्, भगवान की कृपा प्राप्त होने तक उनका नाम-कीर्तन ही जीवन में सच्चा आनंद देता है।

संकीर्तन का संगीतात्मक स्वरूप स्वर, लय और भाव पर आधारित होता है। इसमें प्रयुक्त राग सरल और भक्तिपरक होते हैं। लय की दृष्टि से मध्यम या द्रुत गति अपनाई जाती है, जिससे उत्साह उत्पन्न होता है। इस लयात्मकता को सजीव करने में पखावज की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है।

पखावज भारतीय शास्त्रीय संगीत का प्राचीन वाद्य है जिसकी ध्वनि गंभीर और गूंजदार होती है। संकीतर्ज़ में इसकी थाप संगीत को लयबद्ध और प्रभावशाली बनाती है। जब नाम-कीर्तन के साथ पखावज की ध्वनि गूंजती है, तो भक्ति की

भावना चरमोत्कर्ष पर पहुँचती है। हवेली संगीत में इसे 'आनंद-ध्वनि' कहा गया है, क्योंकि यह सामूहिक भक्ति को जीवंत करती है।

'चौरासी वैष्णव की वार्ता' ग्रंथ में यह प्रसंग अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह संकीर्तन की परंपरा को पुष्ट करने वाला ऐतिहासिक साक्ष्य प्रस्तुत करता है। इसमें उल्लिखित उक्त संवादों से यह स्पष्ट होता है कि श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य जी ने संकीर्तन को केवल संगीत या मनोरंजन का साधन नहीं माना, बल्कि उसे सेवा और भक्ति का अत्यंत आवश्यक अंग समझा।

पहले वचन — "तासो कुम्भन दास सों श्री आचार्य जी आप कहे सो तुम समय-समय के कीर्तन नित्य श्री गोवर्धननाथ जी को सुनाइयो।" से यह ज्ञात होता है कि महाप्रभुजी ने अपने शिष्य कुम्भनदास जी को आदेश दिया कि वे समय-समय पर श्री गोवर्धननाथ जी के समक्ष कीर्तन प्रस्तुत करें। यह इस बात का प्रमाण है कि वैष्णव भक्ति परंपरा में कीर्तन को नित्य सेवा का भाग माना जाता था। इस प्रकार, कीर्तन केवल उत्सवों या विशेष अवसरों तक सीमित न रहकर, दैनिक साधना का अंग बन चुका था।

दूसरे प्रसंग में कहा गया है — "श्री महाप्रभु जी अपने मन में विचारे जो श्रीनाथ जी के यहां और तो सब सेवा को मण्डान भयो है और कीर्तन को मण्डान नाहीं कियो है, ताते अब सूरदास जी को दीजिये...।"

इस प्रसंग से ज्ञात होता है कि महाप्रभु वल्लभाचार्य जी ने यह अनुभव किया कि श्रीनाथजी की हवेली में सब प्रकार की सेवाएँ — भोजन, वस्त्र, शृंगार, आरती आदि सुचारू रूप से चल रही हैं, परंतु कीर्तन-संगीत की सेवा का आयोजन (मण्डन) अब तक नहीं हुआ। अत: उन्होंने भक्त सूरदास जी को उस सेवा के लिए नियुक्त किया।

यह प्रसंग हवेली संगीत और संकीर्तन परंपरा दोनों की ऐतिहासिक नींव को दर्शाता है। सूरदास जी को श्रीनाथजी की कीर्तन-सेवा सौंपना इस बात का प्रतीक है कि कीर्तन को आध्यात्मिक सेवा का सर्वोच्च रूप माना गया। इस सेवा में संगीत, पदगायन, राग और ताल का प्रयोग केवल कलात्मकता के लिए नहीं, बल्कि ईश्वर की महिमा और भक्ति के भाव को प्रकट करने के लिए होता था।

संकीर्तन का दार्शनिक अर्थ यहाँ कीर्तन का आशय केवल गान नहीं, बल्कि भावपूर्ण ईश्वर-स्मरण से है। जब यह स्मरण सामूहिक रूप से, राग-ताल और वाद्य-संगीत के साथ किया जाता है, तो वह संकीर्तन* कहलाता है। वल्लभ संप्रदाय में यह सामूहिक भक्ति का मूल आधार बना।

इस युग में संकीर्तन के साथ पखावज का प्रयोग प्रमुखता से होने लगा। पखावज

की गंभीर और मधुर थाप ने कीर्तन को लयबद्ध और दिव्य अनुभूति से युक्त किया। श्रीनाथजी की हवेली में पखावज, मंजीरा और ताली के साथ कीर्तन का आयोजन भक्तिभावना को और सशक्त करता था।

डॉ. रमा वल्लभ मिश्र के अनुसार दक्षिण भारत में आल्वार संतों ने लगभग 1200 वर्ष पूर्व वैष्णव मंदिरों में प्रभु के गुणगान और लीलागान की गेय पद-परंपरा को जन्म दिया, जो आगे चलकर संकीर्तन की आधारशिला बनी। उनके पद 'दिव्य प्रबंध' कहलाए, जिन्हें संगीत, काव्य और भक्ति की दृष्टि से श्रेष्ठ तथा वेदमंत्रों के समान पवित्र माना गया।

इनकी परंपरा को श्री रामानुजाचार्य ने आगे बढ़ाया। आल्वार संतनी श्री स्वरूप रंगनायंकी जी प्रभु-विग्रह के समक्ष इन प्रबंधों का गायन और नृत्य करती थीं, और नृत्य करते-करते ही परमधाम को चली गईं। इससे स्पष्ट होता है कि दक्षिण भारत में गायन, वादन और नृत्य को प्रभु-सेवा का अंग माना गया।

जयदेव की 'गीतगोविंद' इस परंपरा का प्रमाण है, जहाँ जयदेव गायन करते और उनकी पत्नी पद्मावती जी नृत्य करती थीं। मुस्लिम आक्रमणों के बाद यह परंपरा क्षीण हो गई, यद्यपि दक्षिण के कुछ मंदिरों में अब भी दिव्य प्रबंधों का गायन होता है। बाद में पुरन्दर दास और त्यागराज की रचनाएँ इस भक्ति-संगीत परंपरा में प्रमुख हुईं।

डॉ. रमा वल्लभ मिश्र के अनुसार जब उत्तर भारत में ध्रुपद गायन शैली का विकास हुआ, उसी समय उसके आधार पर विष्णुपद गायन शैली भी प्रचलित हुई। यह शैली प्रभु की लीलाओं और गुणों के गान पर आधारित थी, जो संकीर्तन की भावनात्मक अभिव्यक्ति का रूप बनी। धीरे-धीरे यह परंपरा पूरे भारत में फैल गई और भक्ति-संगीत का सशक्त माध्यम बनी।

ब्रजभूमि में स्वामी हरिदास जी, हित हरिवंश जी तथा पुष्टिमार्गीय अष्टछाप कवि-संगीतज्ञों ने विष्णुपद गायन को लोकप्रिय बनाया। इन्होंने श्रीनाथजी और राधा-कृष्ण की लीलाओं को संगीत के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाया। इस परंपरा से भक्ति का वातावरण गहराया और संगीत साधना का स्वरूप भक्तिमय हुआ।

इसी काल में मिथिला के विद्यापति, अवध के तुलसीदास, कबीरदास, राजस्थान की मीराबाई, महाराष्ट्र के तुकाराम, दिल्ली की सहजोबाई और गुजरात के नरसी मेहता जैसे संतों ने भी अपनी कविताओं और संगीत के द्वारा भक्ति की नई धारा प्रवाहित की। इन संतों के पदों में संगीत, काव्य और अध्यात्म का समन्वय था, जिसने भारतीय संगीत को भावप्रधान दिशा दी।

डॉ. रमा वल्लभ मिश्र के अनुसार, पुष्टिमार्ग की कीर्तन-परंपरा अत्यंत प्राचीन

और सुदृढ़ है। इसका आरंभ महाप्रभु वल्लभाचार्य जी द्वारा स्थापित जतीपुरा की मंदिर-परंपरा से हुआ, जहाँ पूजा, अर्चना, सेवा, दीक्षा आदि के सभी नियम और सिद्धांत सुव्यवस्थित रूप से निश्चित किए गए। यह परंपरा केवल जतीपुरा तक सीमित नहीं रही, बल्कि बाद में वल्लभ वंश के आचार्यों द्वारा देशभर के देवालयों में समान रूप से लागू की गई।

पुष्टिमार्ग की विशेषता यह है कि इसमें राग, भोग और श्रृंगार तीनों का प्रयोग प्रभु सेवा में किया जाता है। इन तीन प्रवृत्तियों के माध्यम से मनुष्य की सांसारिक प्रवृत्तियों को ईश्वरमय बनाकर, उसे सांसारिकता से ऊपर उठाने का प्रयत्न किया जाता है। यहाँ संगीत, सौंदर्य और भोग अर्थात् इन्हें ईश्वर-भक्ति का अंग माना गया है।

इस परंपरा में ऋतु, समय और त्यौहारों के अनुसार प्रभु के श्रृंगार, वस्त्र, आभूषण और भोग में परिवर्तन किया जाता है। जैसे कि 'श्रीनाथ जी की प्राकट्यवात' में वर्णित है— ''गोसाईं जी आप विचारे जो आजकल ग्रीष्मकाल है, तासुं आपकुं दही भात प्रिय है, सौं नित्य राजभोग करने लगे हैं।''

इस उद्धरण से स्पष्ट होता है कि पुष्टिमार्गीय भक्ति में प्रभु की सेवा और कीर्तन का प्रत्येक कार्य ऋतु और भावनात्मक अनुकूलता के साथ किया जाता था।

पुष्टिमार्ग की भक्ति-परंपरा में राग-सेवा का विशेष स्थान है। यह मात्र संगीत का साधन नहीं, बल्कि प्रभु की दैनिक उपासना का सजीव अंग है। राग-सेवा की विशिष्टता यह है कि इसमें समय, ऋतु और त्यौहार के अनुसार संगीत, राग-रागिनी और तालों का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार, प्रत्येक दिन की प्रत्येक झांकी नवीनता और भावनात्मक ताजगी से परिपूर्ण होती है।

पुष्टिमार्ग में *नित्य सेवा और वाषिज़्क सेवा दो प्रकार की सेवाएँ मानी गई हैं। नित्य सेवा में दिनभर की आठ झांकियाँ (अष्टयाम सेवा) होती हैं, जिनमें प्रभु श्रीकृष्ण के बाल्य, यौवन और लीलामय स्वरूप के विविध भाव प्रकट होते हैं—

1. मंगला झांकी - प्रभु को जगाने की सेवा, जैसे जगावती अपने सुत को रानी।

2. श्रृंगार झांकी - प्रभु के नित्य नवीन श्रृंगार का वर्णन, जैसे आज को सिंगार सुभग सावरे गुपाल जू को।

3. ग्वाल झांकी - ग्वाल-भेष, गाय दुहना और गोचारण की लीलाएँ, जैसे गाइ खिलावत सोभा भारी।

4. राजभोग झांकी - मध्यान्ह भोजन और छाक-लीला का वर्णन, जैसे मोहन जीमत छांक ग्वाल मंडली मांहि।

5. उत्थापन झांकी - विश्राम के पश्चात् नटवेश में कृष्ण का प्रकट होना, जैसे देखो री नागर नट नृत्तति कालंदी।

6. संध्या भोग झांकी - संध्या के भोग और पकवानों का वर्णन, जैसे मधु मेवा पकवान मिठाई पिस्ता दाख बादाम।

7. संध्या आरती झांकी - प्रभु की आरती, जैसे आरती गोपिका रमण गिरिधरनजी की।

8. शयन झांकी - रात्रि विश्राम की सेवा, जैसे शीतकाल रूचि-रूचि सेजन बनाई, रंग महल में परेहें परदा।

इन झांकियों के साथ गाए जाने वाले पदों में राग, रागिनियाँ और तालों का संयोजन भक्ति-भाव को संगीतात्मक ऊँचाई प्रदान करता है।

फागोत्सव :

पुष्टिमार्ग में फागोत्सव संगीत, नृत्य और भक्ति का आनंदमय संगम है। जैसे पद में कहा गया— 'कुटिल कटाक्ष प्रेम रंग तकि-तकि मारत प्रिय के हिय।'

अष्टछाप कवियों ने नित्य-उत्सव की आठ झांकियों में सामयिक रागों द्वारा कीर्तन की परंपरा स्थापित की, जो आज भी हवेली संगीत में जीवित है। प्रत्येक झांकी में विशेष रागों का प्रयोग किया जाता है—

मंगला में ललित, विभास, भैरव; श्रृंगार में बिलावल, गुणकली, रामकली; ग्वाल में तोड़ी, आसावरी; राजभोग में सारंग, देसी; उत्थापन में भीमपलासी; संध्या भोग में गौरी, पूरिया; आरती में पूर्वी, श्री; और शयन में ईमन, बिहाग, केदार।

सालभर की राग-योजना भी निर्धारित है—आषाढ़ में मल्हार, श्रावण में शीतल राग, जन्माष्टमी पर ललित रहित राग, आश्विन में मालव, और कार्तिक प्रबोधिनी पर गर्म रागों का आरंभ।

पुष्टिमार्ग की हवेली संगीत परंपरा में प्रत्येक उत्सव के लिए विशेष रागों का विधान है। ये राग केवल संगीत की दृष्टि से नहीं, बल्कि भक्ति, ऋतु और भाव के अनुरूप चुने गए हैं।

फाग, हिंडोला और होली के समय रायसा, मल्हार, जंगला और मारू रागों का प्रयोग होता है, जो उल्लास और रंग-भाव को प्रकट करते हैं। जन्माष्टमी पर रायसा और जैतश्री, सांझी में जंगला और मारू, तथा फूल मंडली पर शहाना राग गाए जाते हैं।

चैत्र मास की राम नवमी पर वृन्दावनी सारंग में बधाइयाँ गाई जाती हैं। रथयात्रा में मल्हार प्रधान होता है, जबकि शीत ऋतु में मालकौंस, आसावरी, धनाश्री, तोड़ी और पूरीया तथा ग्रीष्मकाल में वृन्दावनी सारंग, बिलावल, रायसा, बसंत और मालव रागों का प्रयोग होता है।

नट राग वीरता और उत्साह के भाव के लिए, जबकि मालव मिलन और रास–भाव के लिए प्रयुक्त होता है, विशेषकर शरद पूर्णिमा पर जब राधा–कृष्ण का श्वेत श्रृंगार और रासलीला होती है।

पुष्टिमार्ग की संगीत–सेवा में ऋतु और समय के अनुसार रागों का स्पष्ट विधान है। इसका उद्देश्य प्रकृति और भक्ति के सामंजस्य को व्यक्त करना है।

प्रातःकालीन ठण्डे राग जैसे भैरव, विभास, बिलावल, रामकली, देवगंधार, मारू, सारंग, धनाश्री और सूहा–मल्हार शांति, ताजगी और भक्ति की गंभीरता का भाव जगाते हैं।

सायंकालीन राग जैसे ईमन, कल्याण, अडाना, सोरठ, कान्हरा, जैजैवन्ती, मल्हार, पूरिया, गौरी और नट दिनभर की थकान मिटाकर मधुर अनुरक्ति और संध्या–भाव प्रकट करते हैं।

प्रातःकालीन गर्म राग जैसे तोड़ी, खट, पंचम, मालकौंस, ललित, आसावरी, मालव और बसंत में गहराई, तेजस्विता और माधुर्य का संगम होता है।

पुष्टिमार्गीय संगीत–परंपरा अत्यंत प्राचीन और शुद्ध राग–संरचना पर आधारित है। इसमें रागों का प्रयोग केवल संगीत की दृष्टि से नहीं, बल्कि भक्ति और भावानुभूति के साधन के रूप में किया जाता है।

इस संप्रदाय में भैरव और पूर्वी जैसे राग लगभग पूरे वर्ष प्रातः और सायंकाल दोनों समय गाए जाते हैं। यहाँ रागों में किसी भी प्रकार का परिवर्तन या आधुनिक प्रयोग वर्जित है — रागों के पारंपरिक स्वरूप को ही मान्यता दी गई है। कई ऐसे प्राचीन राग, जिनका स्वरूप आज के शास्त्रीय संगीत में परिवर्तित हो चुका है, अभी भी इस परंपरा में अपने मूल रूप में सुरक्षित हैं। उदाहरण के लिए, पूरिया धनाश्री में कोमल धैवत का प्रयोग होने पर भी इस संप्रदाय की धनाश्री में शुद्ध धैवत प्रयुक्त होता है।

रागों के विभिन्न रूप जैसे सारंग, बिलावल, गौरी आदि के अनेक भेद यहाँ पाए जाते हैं, किन्तु पदों के नाम वही पारंपरिक रूप में रखे गए हैं। विशेष बात यह है कि किसी राग के सबसे लोकप्रिय पद की प्रथम पंक्ति ही उस राग–स्वरूप का नाम बन जाती है। यहाँ भैरवी राग को त्याज्य माना गया है, तथा किसी भी नवीन राग या आधुनिक कविता को स्थान नहीं दिया गया। केवल पुष्टिमार्गीय और मर्यादापूर्ण भक्तों की रचनाएँ ही मान्य हैं।

स्वामी विट्ठलनाथ जी द्वारा निर्धारित कुल 36 राग–रागिनियाँ पुष्टिकीर्तन के अंतर्गत समय और ऋतु के अनुसार गाई जाती हैं — मल्हार, ललित, पंचम, आसावरी, भैरव, मालव, तोड़ी, कल्याण, गुर्जरी, मालवी, गौड़ी, बिलावल, धनाश्री, रंगीली, खमाज, देसावर, कान्हरा, गौड़ मल्हार, कैदारो, पटमंजरी, रामकली, गंधार, वराड़ी, कुकुभ,

कामोद, नट, गुणकली, माधवी, देस, विभास, हास, काफी, सोरठ, ईमन, जैजैवन्ती तथा सारंग।

कई राग जैसे खट, रायसा, कान्हड़ा, मालव, गौरी आदि आज सामान्य संगीत में सुनाई नहीं देते, परंतु पुष्टिमार्ग की इस परंपरा में वे आज भी जीवंत हैं।

पुष्टिमार्गीय कीर्तन परंपरा में संगीत और भक्ति दोनों का अद्‌भुत समन्वय देखने को मिलता है। इस मार्ग के प्रमुख गायक एवं वाग्गेयकार (गायक-कवि) केवल अष्टछाप कवि ही नहीं थे, बल्कि अनेक अन्य भक्त-संगीतकारों ने भी इस परंपरा को समृद्ध किया।

अष्टछाप के अतिरिक्त जिन प्रमुख रचनाकारों ने पुष्टिमार्गीय संगीत में महत्वपूर्ण योगदान दिया, उनमें— श्री हित हरिवंशजी, श्री आनंदघनजी, स्वामी श्री हरिदासजी, श्रीमद् रसिकप्रीतमजी, ताजबीवी, श्री कृष्णजीवनजी, श्री चतुर बिहारीजी, श्री धोंधू, श्री वल्लभ गिरिधर, श्री विट्ठल गिरिधर, श्री गदाधर मिश्र, श्री नागरीदास, श्री कल्याण भट्टजी, श्री द्वारकेशजी, श्री मुरारीदास, श्री जगतराय, श्री गदाधरजी, श्री आसकरणजी, श्री रामरायजी, तथा श्री तानतरंग खाँ जैसे महान कलाकार शामिल हैं। इन कवि-गायकों ने भक्ति, राग और काव्य को मिलाकर पुष्टिमार्गीय संगीत-साधना को नई ऊँचाइयाँ प्रदान कीं। उनकी रचनाओं में भाव, राग और ताल का अद्‌भुत संतुलन देखने को मिलता है, जो आज भी मंदिर-कीर्तन परंपरा में जीवित है।

पं. लक्ष्मण भट्ट के अनुसार हवेली संगीत की विशेषताएँ भक्ति, राग और शास्त्र का सुंदर समन्वय प्रस्तुत करती हैं। यह संगीत केवल कलात्मक नहीं, बल्कि ठाकुरजी की नित्य और वार्षिक सेवा-साधना से जुड़ा हुआ है। इसकी प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

(1) नित्य एवं वार्षिक सेवा का आधार :- हवेली संगीत में समय और ऋतु के अनुसार रागों का विधान होता है। जैसे फागुन में सारंग और काफी रागों में रसिया गाए जाते हैं, दीपावली पर कान्हरा, बसंत पंचमी पर जयदेव की अष्टपदी का गायन होता है। यह सब ठाकुरजी की दैनिक सेवा के आठ यामों में भक्ति के निरंतर प्रवाह के लिए किया जाता है।

(2) भक्ति प्रधान शैली :- इसमें राग की शास्त्रीयता या वादियों-सम्वादियों की जटिलता की अपेक्षा भाव और भक्ति को प्रधानता दी जाती है। यह शैली ध्रुवपद-धमार पर आधारित होते हुए भी सरल, शांत और भावपूर्ण है। गायक बोलों की वृद्धि और भावानुकूल तानें गाते हैं, जिससे श्रोताओं में भक्ति की लहर उत्पन्न होती है।

(3) ताल प्रयोग :- हवेली संगीत में चौताल, आड़ा चौताल, सूलताल, झूमरा, दीपचंदी, रूपक, कहरवा आदि तालों का प्रयोग प्रचलित है, जो गायन को गाम्भीर्य

और लयबद्धता प्रदान करते हैं।

(4) विलम्बित लय और धमार गायन :- इसमें विलम्बित लय का उपयोग किया जाता है। धमार-गायन अत्यंत प्रभावशाली होता है, विशेषतः फागुन मास में धमार या त्रिवट रूप में पद गाकर अंत में दीपचंदी या कहरवा लय में परिवर्तित कर दिया जाता है, जिससे संगीत में लोक-सरलता आती है।

(5) रूप और शैली का वैविध्य :- हवेली संगीत में विष्णुपद और ध्रुवपद-धमार दोनों पाए जाते हैं। कभी-कभी ठुमरी जैसी शैली भी सुनाई देती है, जो इसके भाव-सौंदर्य को और समृद्ध करती है।

(6) गायकी की विशेषता :- ध्रुवपद गायकी पर आधारित होने के कारण इसमें भावाभिव्यक्ति, राग, गीत और ताल का सुंदर सामंजस्य होता है। गमक, मींड, दमदार व नियंत्रित आवाज और लय की सटीकता इसकी पहचान है।

(7) शुद्धता और मर्यादा :- यह संगीत मार्गी संगीत की श्रेणी में आता है। यहां भोग, वाद्य और राग-संगीत की शुद्धता का विशेष ध्यान रखा जाता है। अशुद्ध या परिवर्तित रागों को 'छुआ' माना जाता है।

इस प्रकार हवेली संगीत भक्ति की सरलता, रागों की शुद्धता और भावनाओं की गहराई का अद्‌भुत संगम है, जो वल्लभ संप्रदाय की मंदिर-सेवा परंपरा को संगीतमय बनाता है।

पुष्टिमार्गीय कीर्तन भारतीय भक्ति-संगीत की एक अद्वितीय परंपरा है, जिसमें भक्ति, काव्य और संगीत का समन्वय मिलता है। अष्टछाप कवियों ने ठाकुरजी की आठों झांकियों — मंगला से शयन तक के लिए नित्य नवीन पदों की रचना की, जो समय, ऋतु और राग के अनुसार तत्काल रचे और गाए जाते थे। यह आशु-सृजन की परंपरा भारत में केवल इसी संप्रदाय में मिलती है। कीर्तन मंडली में एक मुख्य कीर्तनकार और आठ झेलरिया (सहयोगी गायक) होते थे। मुख्य गायक तानपुरा या मंजीरा लेकर गाते थे और सब मिलकर राग-ताल के साथ भक्ति-भाव प्रकट करते थे।

पुष्टिमार्गीय कीर्तन परंपरा भक्ति, संगीत और काव्य का अनोखा संगम है। इसमें राग-रागिनियों, तालों और ऋतुओं के अनुरूप ठाकुरजी की नित्य सेवाओं, झांकियों और उत्सवों में कीर्तन किया जाता है। यह शैली ध्रुपद-धमार पर आधारित होते हुए भी भक्ति-भाव की सरलता, मर्यादा और सौंदर्य से ओतप्रोत है। अष्टछाप कवियों ने इस परंपरा को समृद्ध किया, जिससे कीर्तन केवल संगीत न रहकर ईश्वर के साथ आत्मिक एकत्व का माध्यम बन गया।